समुदाय व संरक्षण

समुदाय आधारित जैवविविधता संरक्षण तथा आजीविका सुरक्षा

अंक ३, नं. ३ मई २०११

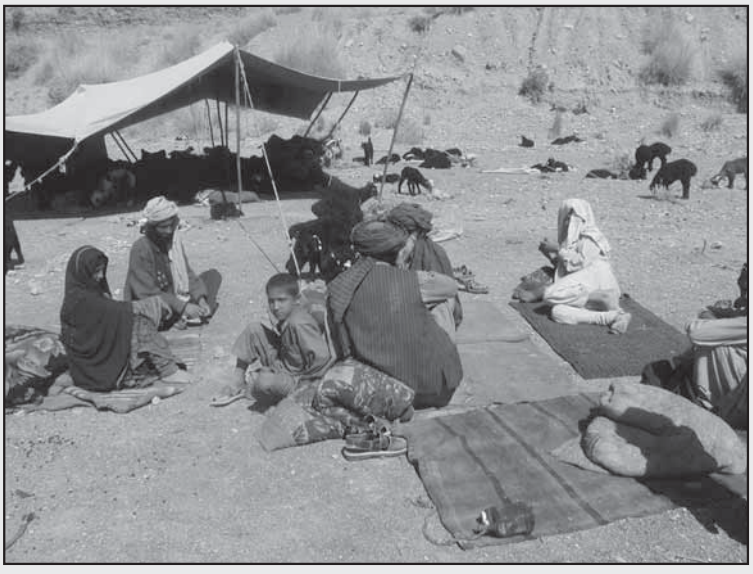

सूचि

१. **समाचार और विश्लेषण**
- वन्य जीवों के अतिमहत्त्वपूर्ण आवास–स्थलों (CWH - क्रिटिकल वाईल्ड लाईफ हॅबिटाट्) के लिये मार्गदर्शक तत्त्वों पर वन एवं पर्यावरण मंत्रालय का 'घुम जाओ'
- महाराष्ट्र के गडचिरोली ज़िले में स्थित मेंढा लेखा गाँव की दूसरी विजय

२. **कार्यशालाएँ और संवाद**
- IASC (इंटर्नैशनल असोसिएशन फॉर स्टडी ऑफ द कॉमन्ज़) की १३वी द्विवार्षिक सभा
- नंदादेवी बायोस्फिअर रिज़र्व (आरक्षित जैव क्षेत्र) में विचार–विमर्श सभा
- वन अधिकार अधिनियम (FRA - फॉरेस्ट राईट्स ॲक्ट) के तहत समुदायों के वन संसाधनों के प्रबंधन के बारे में राष्ट्रीय स्तर पर कार्यशाला
- राजस्थान में चरवाहों का विनिमय कार्यक्रम
- चरवाहों के लिये समुदाय की जैव सांस्कृतिक प्रारूप संधि (BCP - बायो–कल्चरल कम्युनिटी प्रोटोकॉल)

३. **केस स्टडीज**
- दक्कन पठार के पशु पालक समुदाय
- निसर्ग संरक्षण और चरवाहों की आजीविका : राजस्थान में किया गया अध्ययन
- बलुचिस्तान में पश्तून जनजाति के पलायन मार्ग

४. **अंतर्राष्ट्रीय समाचार**
- महिला चरवाहों का विश्व सम्मेलन

पशुपालन करने वाले समुदायों को समर्पित विशेष अंक

संपादकीय

समुदाय और संरक्षण का यह अंक पशुपालन करने वाले समुदायों को समर्पित कर रहे हैं। अपने भेड़ों को, ऊंटों को तथा मवेशियों को चराने के लिये, और उनके आरोग्य की रक्षा के लिये पशु पालक समुदाय भूमि पर अवलंबित रहते हैं। इन में से अनेक समुदाय पलायन भी करते हैं। पशु पालन करनेवाले समुदाय[१] दुनिया भर में फैले हुए हैं। भारत में रहनेवाले पशु पालक समुदायों के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है और ज़्यादा दस्तावेज भी नहीं बनाये गये हैं। जिन समुदायों के बारे में कुछ जानकारी पाई गई है, उनमें से एक है उत्तर भारत के हिमाचल प्रदेश में, उत्तर प्रदेश में और पंजाब में रहने वाला गड्डी समुदाय, जिसे 'पहाड़ी बारमौर' भी कहते हैं। पशुपालन करने वाला एक अन्य समुदाय है अग्नेय यानि दक्षिण पूर्व लद्दाख का चांगपा समुदाय। इस समुदाय के लोग तिब्बत के साथ व्यापार भी करते हैं। कुछ समुदाय मानते हैं कि पशुपालन करना उनका एक पवित्र कर्तव्य है। उदाहरण है गुज्जर समुदाय यानि यादवों का समुदाय, जो खुद को भगवान कृष्ण के वंशज मानते हैं। पशुपालन का यह महत्त्व रहा है कि वह कम लागत में काफ़ी उत्पादन देता है। रसायन मुक्त खाद, मांस, दूध, ऊन तथा अन्य उत्पादपशुपालन से मिलते हैं। साथ ही साथ पशुओं की संख्या भी तो बढ़ती है, जो भविष्य में आजीविका का साधन बनेगी। पशुओं की जो नस्लें पाली जाती हैं उनके विकास में स्थानीय परिवेश की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है और वे नैसर्गिक और सांस्कृतिक मापदंडो के आधार पर चुने गये नमूनों से पैदा किये जाते हैं[२]। प्राय: यह नस्लें अल्प मात्रा में उपलब्ध नैसर्गिक वनस्पतियों पर भी जीवित रह पाती हैं और अकाल और रोगों का भी अच्छी तरह सामना कर पाती हैं। ये कई उत्पादन देती हैं, और अगर उनके प्रजनन के और चरने के तरीके (पॅटर्न) में बाधा नहीं आये, तो पर्यावरणीय संतुलन को बनाये रखती हैं। और सब से अहम् बात तो यह है कि पशु पालन करने वाले समुदाय नस्लों की विविधता को बनाये रखने में प्राथमिक भूमिका निभाते हैं।

लेकिन आज इन समुदायों को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। नस्लों की विविधता कम होने लगी है। इस का एक कारण यह है कि पारंपरिक चरागाहों से, जैसे कि राष्ट्रीय उद्यानों से, पशुओं को दूर रखा जा रहा है। कुछ चरागाहों को पशुओं और पशु पालन करने वालों से छीन कर उन जगहों पर वृक्षारोपण कर के सफ़ेदा और 'जेट्रोफ़ा' के पेड़ों के बागान बनाने की कोशिश की जा रही है। बाज़ार संचालित 'ग्लोबलायज़ेशन', मतलब भूमंडलीकरण भी पशु पालन को कड़ी चुनौती दे रहा है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्न और कृषि संस्थान (FAO - फ़ुड ॲण्ड ॲग्रिकल्चर ऑर्गनायज़ेशन) ने भी पशु पालन के बारे में चिंता जताई है। इन चुनौतियों से हो रहे नुकसान को कम करने के लिये बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। पशु पालन करने वालों को बनाये रखने के लिये योग्य नीति बनाकर उनके अधिकारों को और उत्पादन व्यवस्था को सुरक्षित रखने में, और जैव विविधता का रक्षण कराने में सरकार की भूमिका का बड़ा महत्त्व है। इन चरागाहों को लौटाने के लिये और चरवाहे समुदायों को उनके अधिकार वापस देने के लिये सरकार की मध्यस्थता ज़रूरी है। लेकिन सरकारी पशु पालन विकास नीति बनाने में कोई प्रगति नहीं दिखाई देती है। उधर कृषि मंत्रालय और पर्यावरण मंत्रालय – दोनों ही अपने विलक्षण पशु पालन विरोधी रवैंये पर अड़े हुए हैं।

मगर ऐसा नहीं है कि कोई अच्छी खबर नहीं है। खुशी की भी एक बात है। पशु नस्लों का पालन करने वाले समुदायों को सहायता देने वाले व्यक्तियों और गैर सरकारी संस्थानों के 'लाइफ़' नाम के एक संपर्क संघ ने 'पशु पालकों के अधिकार' इस विचार का विकास किया है, जिसके ज़रिये वे स्थानीय नस्लों की सुरक्षा और निरंतर उपयोग में समुदायों की भूमिका को दृढ़ बनाने की कोशिश कर रहे हैं[३]। इन अधिकारों को एशिया, अफ़्रीका और अन्य प्रदेशों के पशु पालन कर्ताओं के साथ व्यापक स्तर पर चर्चाओं के बाद, और मौजूदा तथा उभरती कानूनी व्यवस्था, और विशेष कर संयुक्त राष्ट्रसंघ के 'कन्वेन्शन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी (CBD)' के आधार पर तय किया गया है।

एक अन्य आशावादी घटना यह है कि पारंपरिक जीवनशैली की प्रथा चलाने वाले आदिवासी और स्थानीय समुदाय के दर्ज़े पर राजस्थान के रायका पशु पालक समुदाय ने विकसित की हुई जैव सांस्कृतिक प्रारूप संधि (BCP) के जरिये लगाया हुआ दावा। और फिर केवल पुरूष परिवार प्रमुखों के दावे को मान्यता देनेवाली पारंपरिक पद्धति के विरोध में, और संसाधनों पर दावा लगाने के लिये पशु पालक महिलाओं ने आयोजित किया हुआ जागतिक संमेलन भी तो आशादायक है। या फिर राजस्थान में जो संपन्न हुआ वह चरवाहों का 'एक्सचेंज' कार्यक्रम लो, जिसमें वन क्षेत्र में चराई के हक पर वन अधिकार अधिनियम, २००६, के जरिये दावा दर्ज करने के बारे में चर्चा हुई थी।

समुदाय और संरक्षण का यह अंक पशु पालन करनेवाले समुदायों को समर्पित किया है। संरक्षण और आजीविकाओं के प्रश्न से जुड़ी कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाओं का ज़िक्र भी इसमें किया गया है।

ज़रूर पढ़िये।

मिलिंद

---

१. अधिक जानकारी के लिये अंग्रेज़ी में पढ़िये : http://www.dfid.gov.uk/r4d/PDF/outputs/ZC0181b.pdf

२. अधिक जानकारी इस पत्रिका में अंग्रेज़ी में उपलब्ध है : Policy Matters, October 2010, Livestock Keepers Rights: A Rights-Based Approach to invoking Justice for Pastoralists and Biodiversity Conserving Livestock Keepers, Ilse Kohler-Rollesfson and Evelyn Mathia.

३. देखिये Policy Matters.

१. समाचार और विश्लेषण

वन्य जीवों के अतिमहत्त्वपूर्ण आवास–स्थलों (CWH – क्रिटिकल वाईल्ड लाईफ हॅबिटाट्) के लिये मार्गदर्शक तत्त्वों पर वन एवं पर्यावरण मंत्रालय का 'घुम जाओ'

२०११ के फरवरी महीने में केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने CWH के लिये २००७ में बनाये गये मार्गदर्शक तत्त्वों को खारिज करके नये मार्गदर्शक तत्त्व जारी किये। खारिज किये गये मार्गदर्शक तत्त्वों में लोकतंत्र, और स्थानीय जानकारी पर आधारित प्रक्रिया को सुनिश्चित करने वाले निर्देश सम्मिलित थे। २००८–०९ में निसर्ग संरक्षण में और सामाजिक कार्य में जुटे कई संस्थानों ने 'फ़्यूचर ऑफ कॉन्ज़र्वेशन' नाम के समूह के माध्यम से और अधिक मार्गदर्शन भी पेश किया था। वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने जनजाति व्यवहार मंत्रालय के साथ मिलकर हाल ही में, वन अधिकार अधिनियम[४] के क्रियान्वयन की जाँच कराने हेतु एक समिति गठित की थी। इस समिति ने भी वन्य जीवों के महत्त्वपूर्ण स्थानों के लिये योग्य प्रक्रियाओं की सिफ़ारिश की थी। लेकिन नये मार्गदर्शक तत्त्वों ने इन सारी बातों को भुला कर स्थानीय वन अधिकारियों को छह महीनों के अंदर ऐसे क्षेत्रों को पहचान कर वहाँ CWH बनवाने के प्रस्ताव रखने का आदेश दिया। नये आदेश ने इस तथ्य की उपेक्षा की है कि वन्य जीवों के लिये महत्त्वपूर्ण आवास–स्थलों को पहचानने के लिये आवश्यक पर्यावरणशास्त्रीय जानकारी वन अधिकारियों के पास नहीं है। साथ ही इस बात को भी भुला दिया कि ज़्यादातर अधिकारियों के लिये पर्यावरणशास्त्र में माहिर किसी अन्य व्यक्ति से इस बात पर कोई सलाह माँगना भी बहुत मुश्किल है।

२००७ के मार्गदर्शक तत्त्वों के अनुसार CWH को पहचानने की प्रक्रिया में ग्राम सभा के साथ सलाह मश्वरा करना आवश्यक था। यह भी स्पष्ट किया गया था कि स्थानीय लोगों को उनकी अपनी भाषा में सारी उचित जानकारी दे दी जाये। इस प्रकार CWH के क्षेत्र को और उसकी सीमाओं को तय करने में स्थानीय समुदायों की जानकारी को भी शामिल कराने के लिये प्रयोजन किया गया था। नये मार्गदर्शक तत्त्वों में समुदाय को इस काम में शामिल कराने की कोई गुंजाइश नहीं है। यह डर भी था कि नये मार्गदर्शक तत्त्वों के अंतर्गत क्षेत्रों की पहचान के लिये रखी गयी छह महीनों की अवधि के कारण सारे राज्य बड़ी हड़बड़ाहट से आगे बढते और इस कारण वन अधिकार अधिनियम का उल्लंघन होता । लेकिन ४ मार्च २०११ को कुछ संस्थानों ने मंत्रालय को CWH बनाने की प्रक्रिया की, और उसके बाद वहाँ के लोगों के वहीं रहने की और अधिकारों में बदलाव लाने की, तथा स्थानांतरण की प्रक्रिया में लगने वाले समय की बात, और वन अधिकार अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार उन्हे पूरा करने की बात पेश की।

इन सब का एक परिणाम यह हुआ कि वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने CWH के लिये फ़रवरी में बनाये गये संशोधित मार्गदर्शक तत्त्वों को वापस ले लिया। ४ मई २०११ को गैर सरकारी संस्थानों की सूचनाओं पर आधारित मार्गदर्शक तत्त्वों का नया मसौदा पेश किया गया। इसके सेक्शन ३ में वन अधिकार अधिनियम के क्षेत्रों को पहचानने से जुड़े प्रावधानों का ज़िक्र किया गया है। सब–सेक्शन 3.1 और 3.2 में स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों के भीतर CWH क्षेत्र को पहचानने के मुद्दों को, और उनसे जुड़े अन्य मुद्दों को FRA के सेक्शन 2(b) तथा सेक्शन 4(1) और (2) के अनुसार सुलझाना होगा। सेक्शन 2(b) के अनुसार CWH क्षेत्र को पहचानने और सूचित करने से पहले 'एक्सपर्ट कमिटी' (यानि कि विषय में माहिर व्यक्तियों की समिति) के साथ खुली चर्चा करने की आवश्यकता है। इस समिति में राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किये हुए स्थानीय लोग भी शामिल हों। प्रस्तावित स्थानांतरण, और उससे जुड़ी सुविधाओं के पूरे पैकेज की स्वीकृति दर्शाने वाली ग्राम सभा की स्वतंत्र सहमति (जो संपूर्ण जानकारी और सोच समझ पर आधारित हो) को लिखित रूप में प्राप्त करने की आवश्यकता पर मार्गदर्शक तत्त्वों के सेक्शन 3.5(e) में ज़ोर दिया गया है।

हाल में इन मार्गदर्शक तत्त्वों पर गौर किया जा रहा है। मार्गदर्शक तत्त्वों के अंग्रेज़ी मसौदे के लिये देखिये : http://moef.nic.in/downloads/public-information/Draft_CWH_Guidelines_May_2011.pdf.

लेखन : अशिष कोठारी (email: ashishkothari@vsnl.com)
पता : कल्पवृक्ष, अपार्टमेंट ५, श्री दत्त कृपा, ९०८ डेक्कन जिमखाना, पुणे 411 004, महाराष्ट्र. Website : www.kalpavriksh.org

महाराष्ट्र के गडचिरोली ज़िले में स्थित मेंढा लेखा गाँव की दूसरी विजय

गडचिरोली ज़िले के मेंढा लेखा गाँव ने पिछले कुछ सालों में एक आदर्श गाँव के तौर पर बड़ा नाम कमाया है। यहाँ की ग्राम सभा सारे निर्णय सब की सहमति के साथ लेती है। सारे हिसाब किताब खुले होते हैं। शराब पर प्रतिबंध लागाया गया है। गाँव के १८०० हेक्टेअर के वन का संरक्षण गाँव ही करता है।

इस गाँव के बारे में अगस्त २०१० में एक और ख़बर छपी थी। FRA के सेक्शन 3(1)(i) के तहत अपने वन क्षेत्र का संरक्षण और प्रबंधन करने के अधिकार के लिए मान्यता प्राप्त करनेवाला इस देश का यह पहला गाँव बना है। (संदर्भ : समुदाय व संरक्षण अंक २, नंबर ३, अक्तूबर २००९). लेकिन गाँव को इस वन में निस्तार और गौण वन उपज का अधिकार होने के बावजूद वन विभाग ने यहाँ बांस की कटाई करने पर रोक लगा दी। वन विभाग का कड़ा विरोध करने के बाद इस बात को मान्यता दी गई, कि बांस की कटाई करके उसे बेचा जा सकता है। फिर वन विभाग ने कटे बांस के लिये 'ट्रान्ज़िट पर्मिट' (मतलब उसे वन से बाहर ले

४. मतलब अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, २००६.

जाने के लिये अनुमति पत्र) देने से इनकार कर दिया। असल में केवल इमारती लकड़ी और राष्ट्रीयकृत वन उपजों के लिये ही ऐसे अनुमति पत्र की ज़रूरत होती है, गौण वन उपजों के लिये नहीं। यह बात वन अधिकार अधिनियम में स्पष्ट की गई है। फिर भी मेंढा के वन से बांस बाहर नहीं जा पाया। केंद्रीय वन मंत्री ने सारे राज्यों के साथ महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री को भी पत्र द्वारा स्पष्ट बताया कि बांस एक गौण वन उपज है, और जहाँ वन अधिकार दिये गये हैं वहाँ से बांस वन के बाहर ले जाने के लिये ग्राम सभा अनुमति पत्र जारी करेगी, और वन विभाग उनकी हर तरह से सहायता करेगा। इसका भी कोई असर नहीं हुआ। अंत में २७ अप्रैल २०११ को महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री के साथ केंद्रीय वन मंत्री मेंढा लेखा गये और उन्होंने ग्राम सभा को 'ट्रान्ज़िट पर्मिट्' सौंप दिया। तब जाकर यह मामला सुलझाया गया।

लेखन : नीमा पाठक ब्रूम (email: neema.pb@gmail.com)
पता : कल्पवृक्ष, अपार्टमेंट ५, श्री दत्त कृपा, ९०८ डेक्कन जिमखाना, पुणे 411 004, महाराष्ट्र. Website: www.kalpavriksh.org

२. कार्यशालाएँ और संवाद

IASC (इंटर्नैशनल असोसिएशन फॉर स्टडी ऑफ द कॉमन्ज़) की १३वी द्विवार्षिक सभा

IASC की १३ वी द्विवार्षिक सभा भारत में हैदराबाद में १० जनवरी से १४ जनवरी २०११ तक चली। इस सभा में स्थानीय और आदिवासी समुदायों द्वारा सार्वजनिक संपत्ति (Common Property) के संरक्षण से जुड़े प्रश्नों को ले कर, और उन्ही से वास्ता रखने वाली भारत की नयी कानूनी व्यवस्था को ले कर कल्पवृक्ष संस्थान ने दो विचारगोष्ठियों का आयोजन किया था। **'सार्वजनिक संपत्ति और आदिवासी तथा अन्य स्थानीय समुदाय द्वारा संरक्षित क्षेत्र'** (ICCAs – इंटरनॅशनल कम्युनिटी कन्झर्व्हड एरियाज़) इस विषय पर ICCA संघटन के साथ और फ़ाउंडेशन फ़ॉर इकॉलॉजिकल सिक्यूरिटी (FES) की सहायता से कल्पवृक्ष ने १२ जनवरी को चर्चासत्र आयोजित किया था। वन अधिकारों के बारे में तथा समुदाय के वन अधिकारों और वनों के प्रबंधन के और समुदाय संरक्षित क्षेत्रों के बारे में शासन पद्धति पर मंच मतलब 'पालिसी फ़ोरम' का आयोजन कल्पवृक्ष ने FES के साथ १४ जनवरी २०११ को किया था।

'सार्वजनिक संपत्ति और आदिवासी तथा स्थानीय समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्र' चर्चासत्र के लिये पर्यावरण तथा आदिवासी समुदायों के अधिकारों के विषय में माहिर वक्ताओं का पैनल बनाया गया था। इस चर्चासत्र का उद्देश्य था आदिवासी समुदाय द्वारा संरक्षित क्षेत्रों और सार्वजनिक संपत्ति से उनके संबंध के बारे में उठने वाले सवालों को सुलझाना। चर्चासत्र में ICCA क्षेत्रों को सहारा देने की व्यवस्था पर उठने वाले प्रश्नों पर बहस हुई और ऐसे क्षेत्रों की स्थिति की, ख़तरों की और क्षेत्रों की जरूरतों की गंभीरता के साथ जाँच की गई। दुनिया के कई इलाकों के ICCA क्षेत्रों के उदाहरणों पर चर्चाएँ हुई और जानकारी का आदान–प्रदान हुआ। हर वक्ता की सांस्कृतिक और राजनैतिक पार्श्वभूमि अलग थी।

सोमालीलैण्ड, मैक्सिको, नेपाल, मलेशिया, सहारा के रेगिस्तान के दक्षिण में स्थित कुछ अफ्रीकी देश, केनया और भारत में संरक्षित किये जानेवाले ICCA क्षेत्रों के मुद्दों पर, चुनौतियों पर और सफलता पर प्रस्तुती की गई। उनमें से कुछ मुद्दे इस प्रकार थे : मौजूदा पारिभाषिक शब्दों की सीमाओं से जुड़े प्रश्न, ICCA क्षेत्रों से वास्तविक अपेक्षाएँ विकसित करने की आवश्यकता से जुड़े हुए मुद्दे, ICCA क्षेत्रों के लिये सामाजिक और कानूनी तौर पर मान्यता न होंने के कारण उठे सवाल, ख़तरे, जैसे कि सरकार द्वारा विकास के लिये क्षेत्र पर दावा किया जाना, शासन विधि की अंग्रेज़ों के जमाने की विरासतें, समुदाय की परतंत्रता और उसे समर्थ बनाने के प्रयास से जुड़े मुद्दे और जैव–सांस्कृतिक संधि, यानि 'प्रोटोकॉल' (BCP) और उनका मूल्य।

भारत की मौजूदा स्थिति में BCP के विकास के लिये रणनीति बनाने के बारे में चर्चा हुई। साथ ही FRA जैसे अधिनियमों का कार्यान्वयन अधिक प्रभावी बनाने की बात पर, और समुदाय के अधिकारों पर आधारित निसर्ग संरक्षण में और ICCA के प्रबंधन में उनकी क्षमता के अनुसार पूरा योगदान पाने के तरीकों पर सोचा गया। इसका उद्देश्य था कि उपनिवेशी शासन नीति द्वारा खड़ी की गई (और अब भी मौजूद) संस्थागत बाधाओं पर काबू पाया जा सके। इसके अलावा संरक्षण के लिये प्रोत्साहन देने के लिए सरकार को प्रवृत्त करने पर, और ICCA क्षेत्रों में हो रहे सामाजिक आंदोलनों के दस्तावेज़ीकरण के बारे में भी चर्चा हुई।

इसके बाद 'पॉलिसी फ़ोरम' में वन अधिकार अधिनियम, समुदाय के वन अधिकार व प्रबंधन, व समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों पर पहले संपन्न हुए चर्चासत्र में उठे सवालों से प्राप्त व्यापक मुद्दों पर विचार किया गया। भारत के वन अधिकार अधिनियम पर, और ICCA क्षेत्रों पर होने वाले उसके परिणामों पर इसका अधिक ध्यान था। इस में पाँच वक्ताओं ने विशिष्ट मुद्दे उठाये। सार्वजनिक संपत्ति पर अधिकार पाने के समाजाधिष्ठित नमूने के उदाहरण के रूप में इस अधिनियम को कैसे इस्तेमाल कर सकते हैं, और दुनिया भर (और विशेष करके जहाँ निसर्ग संसाधनों पर अधिकार सौंपे जाना मुश्किल है, उन प्रदेशों में) इसे कैसे दोहराया जा सकता है, इन बातों की छान बीन की गई। अन्य देशों में ICCA क्षेत्रों के बारे में हो रहे नीति के सूत्रीकरण से भारत को मिली सीखों पर, और ICCA क्षेत्र जिन अंदरूनी तथा बाहरी चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, उन पर भी विचार हुआ। फिर श्रोताओं के साथ उनके सवालों पर चर्चा हुई।

लेखन : मिलिंद वाणी
पता : कल्पवृक्ष, अपार्टमेंट ५, श्री दत्त कृपा, ९०८ डेक्कन जिमखाना, पुणे 411 004, महाराष्ट्र. Website: www.kalpavriksh.org

नंदादेवी बायोस्फिअर रिज़र्व (आरक्षित जैव क्षेत्र) में विचार-विमर्श सभा

कल्पवृक्ष संस्थान और 'वाइल्ड लाइफ़ इन्स्टिट्यूट ऑफ़ इण्डिया' (WII) द्वारा आरंभ की हुई मश्वरे की शृंखला में और उत्तराखन्ड के नन्दादेवी और अस्कोट परिक्षेत्र में निसर्ग संरक्षण और आजीविकाओं की सुरक्षा के लिये योजना बनाने के उद्देश्य से २८ और २९ अप्रैल २०११ को जोशीमठ में दो सभाएँ आयोजित की गई। इन में से एक स्थानीय समुदायों की सभा थी जिसके आयोजन में 'ॲलायन्स फ़ॉर डेवेलपमेंट' का भी सहयोग रहा। वन विभाग के कर्मचारियों के लिये आयोजित दूसरी सभा के लिये नन्दादेवी बायोस्फ़िअर रिज़र्व का सहयोग रहा। दोनों सभाओं में गैर सरकारी संस्थानों का तथा WII के और 'इण्डियन इन्स्टिट्यूट ऑफ़ फॉरेस्ट मॅनेज्मेंट' के रिसर्च कर्ताओं का, और साथ ही अस्कोट अभयारण्य और बिन्सर अभयारण्य के चारों ओर की वन पंचायतों के सदस्यों का सहभाग रहा। WII और कल्पवृक्ष के प्रतिनिधियों ने दोनों सभाओं का संचालन किया। सभाओं में जो मुद्दे सामने आये उनमें से कई उन ५ या ६ ऐसे गाँवों की मुश्किलों के बारे में थे, जो राष्ट्रीय उद्यान के नज़दीक बसे हैं और विशेष कर संसाधनों को इकट्ठा करने पर और यात्रिओं के ट्रेकिंग के मार्ग पर आये प्रतिबंधों के प्रभाव में हैं। १९७० के दशक में चले चिपको आन्दोलन में आगे रहे लाता और रेनी गाँवों के साथ अन्य गाँवों के समुदायों की दृष्टि में प्रमुख सवाल तो गंगा की उपनदियों पर बनाये जा रहे जलविद्युत परियोजनाओं का रहा। सरकार इन परियोजनाओं की निर्मिति के लिये अनुमति तो देती है, लेकिन समुदाय को पत्तियाँ और टहनियाँ इकट्ठा करने और ट्रेकिंग के मार्गों का इस्तेमाल करने पर रोक लगाती है। इस अंतर्विरोध पर स्थानीय लोग क्रोधित हुए हैं। वन्य प्राणियों के साथ होनेवाले संघर्ष के बढ़ने का मुद्दा भी चर्चा में महत्त्वपूर्ण रहा। विज्ञान और वैज्ञानिक, दोनोही समुदाय के लोगों पर प्रतिबंध तो लगाते हैं, लेकिन जलविद्युत परियोजनाओं के परिणामों को अनदेखा भी कर देते हैं, इस के बारे में भी सवाल उठाये गये।

दो दिनों तक चली इन बैठकों में जो सुझाव दिये गए, वे हैं :

१. नन्दादेवी बायोस्फ़िअर रिज़र्व से सब से ज़्यादा प्रभावित ५ या ६ गाँवों को कुछ लाभ होना चाहिये, इस बात पर जोर दिया जाये,
२. वन्य जीवों के साथ होनेवाले संघर्ष से निपटने का हल ढूँढने के लिये कुछ गाँव चुने जाएँ,
३. ट्रेकिंग के मार्गों में से कुछ मार्गों को नियंत्रित रुप से खोल दिया जाये और उनका प्रबंधन स्थानीय लोगों को सौंप दिया जाये,
४. वन विभाग के साथ स्थानीय लोगों के नियमित और संस्थागत चर्चासत्र आयोजित किये जायें,
५. वन अधिकार अधिनियम के बारे में गाँवों की जागरूकता को बढ़ावा दिया जाये और उससे जुड़ी प्रक्रियाओं को आरंभ किया जाये,
६. गाँव के लिये समग्र योजना बनाई जाये और केवल एकांगी और विशिष्ट सरकारी परियोजना के अनुसार नियोजन न हो,
७. प्रदेश के परिदृष्य को ध्यान में रखते हुए प्रबंधन करने के विकल्प खोजे जायें।

लेखन : नीमा पाठक ब्रूम (email: neema.pb@gmail.com)
पता : कल्पवृक्ष, अपार्टमेंट ५, श्री दत्त कृपा, ९०८ डेक्कन जिमखाना, पुणे 411 004, महाराष्ट्र. Website : www.kalpavriksh.org

वन अधिकार अधिनियम (FRA - फॉरेस्ट राईट्स ॲक्ट) के तहत समुदायों के वन संसाधनों के प्रबंधन के बारे में राष्ट्रीय स्तर पर कार्यशाला

वन अधिकार अधिनियम FRA के तहत वन संसाधनों के उपयोग के बारे में समुदायों के अधिकारों (CFRs - कम्युनिटी फ़ॉरेस्ट रिसोर्स राईट्स) पर वसुंधरा और कल्पवृक्ष संस्थानों ने मिलकर २६ और २७ मार्च २०११ को राष्ट्रीय स्तर पर एक कार्यशाला का भुवनेस्वर में आयोजन किया था। वनों में रहनेवाले समुदायों और गैरसरकारी संस्थानों के प्रतिनिधियों को एक साथ इस विषय पर चर्चा करने का मौका इसमें दिया गया। इसमें FRA के तहत CFR के लिये दावे दर्ज करने के दौरान मिले अनुभवों को बताया गया, और CFR के प्रबंधन की जटिलताओं और उनको सुलझाने के लिये आवश्यक संस्थानों पर चर्चा हुई।

उभरते मुद्दे

यह महसूस किया जा रहा है कि दावे दर्ज़ कराने के लिये आवश्यक जानकारी और तकनीकी सहायता का अभाव है और इस दिशा मेंप्रशिक्षण और जागरूकता निर्माण करने की जरूरत है। अनेक राज्यों में देखा जा रहा है कि वन अधिकार समितियाँ (FRC - फ़ॉरेस्ट राईट्स कमिटी) गठित तो की गई हैं, लेकिन उनमें विभिन्न जनजातियों के स्थानीय लोगों का, महिलाओं का तथा वनों पर आश्रित अन्य लोगों का और उनके प्रतिनिधियों का उचित सहभाग नहीं है। और दावे दर्ज कराने में इस बात का परिणाम दिखाई देता है। समुदायों के दावे दर्ज करने में, उनका सत्यापन करने में, स्थलों के नक़्शे बनाने मेंऔर आवश्यक सबूतों को इकट्ठा करने में ज़रूरी सरकारी सहायता नहीं मिल रही है। कार्यशाला से उभरी कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ इस प्रकार हैं :

- वन संसाधनों के उपयोग के बारे में समुदायों के अधिकारों (CFRs) के लिये मान्यता को प्राथमिकता मिले,
- आवश्यक प्रशिक्षण और जागरूकता निर्माण करने के लिये अन्य संस्थानों की मदद से सरकार कदम उठाये और वन संसाधनों से जुड़े सारे लोगों को दावे की प्रक्रिया पूरी करने में सहायता करे,
- वन प्रबंधन से जुड़ी सरकारी नीति में, उपक्रमों में और कानून में आवश्यक बदलाव लाये जायें, ताकि वे FRA की पंक्ति में आ जायें,

- FRA की प्रक्रिया के प्रतिकूल 'ज्वाइंट फौरेस्ट मैनेज्मेंट' की योजना को बंद कर दिया जाये,
- समुदाय के वन संसाधनों के समर्थ प्रबंधन और संरक्षण के लिये ग्राम सभाओं को आवश्यक सहायता दी जाये,
- वन एवं पर्यावरण मंत्रालय द्वारा ऐसे मार्गदर्शक तत्त्व जारी किये जाने चाहिये जिनको अपनाकर वन जमीन पर बनाई जानेवाली विकास की हर परियोजना FRA के प्रावधानों का पालन करेगी,
- संरक्षित क्षेत्रों में (विषेश कर स्थानांतरण में) FRA के प्रावधानों के उल्लंघन को निगरानी के द्वारा रोक दिया जाये,
- केंद्रीय FRA समिति की सूचनाओं और राष्ट्रीय सलाहकार समिति की सूचनाओं के पालन के लिये आवश्यक कदम उठाये जायें।

लेखन : तुषार दश (tushardash01@gmail.com), वसुंधरा और श्रीतमा गुप्ता भाया (sreetama.gb@gmail.com), कल्पवृक्ष
पता : वसुंधरा, ए–७० शहीद नगर, भूबनेस्वर 751 007 ओडिशा/कल्पवृक्ष, C/o ७, सेक्टर १५ ए (दूसरी मंज़िल), नोइडा 201 301, उत्तर प्रदेश
Web-sites: http://www.vasundharaorissa.org, http://www.kalpavrish.org

राजस्थान में चरवाहों का विनिमय कार्यक्रम

राजस्थान के चरवाहों के साथ काम करने वाले स्वयंसेवी संस्थान कृपाविस (KRAPAVIS) ने इसी राज्य में स्थित बख्तपुरा गाँव में २६ और २८ फर्वरी २०११ के बीच पारंपरिक रीति से पशुपालन करने वालों के लिये विनिमय कार्यक्रम आयोजित किया था। कृपाविस के अलावा सेवा मंदिर संस्थान, लोकहित पशुपालक संस्थान (LPPS) और आंध्रा संस्थान भी इसमें शामिल हुए थे। आंध्र प्रदेश के मेडक ज़िले के 'शेपर्डस् संघम्' संस्थान के नरसिमलु, येल्लेश, मुथयलु और पेंतगौड़ भी इसमें शामिल हुए थे।

चरवाहों ने २००६ में आये वन अधिकार अधिनियम के तहत जंगल क्षेत्र में अपने भेड़ बकरियों और मवेशियों को चराने के अधिकार को प्राप्त करने में आये अनुभवों पर चर्चाएँ की। साथ ही स्थानीय परंपरा के अनुसार पशुचिकित्सा करने के बारे में और गडेरियों के अन्य सवालों पर बातचीत हुई। आंध्र प्रदेश के पारंपरिक चरवाहों ने यह बताया कि उन्होंने जंगल में स्थित अपने पारंपरिक चराई क्षेत्रों और अन्य चरवाहों के क्षेत्रों के नक़्शे कैसे बनाये हैं। ग्राम सभा में अपने समुदाय के अधिकारों को पुष्टि दिलाने के लिये इन नक़्शों का और उनसे जुड़ी जानकारी का उपयोग किया जा रहा है। यही गडेरिये गाँव के आरोग्य सेवक भी हैं, और इसी कारण बिमारियों के उपचार के लिये वे किस प्रकार जड़ीबूटियाँ इकट्ठी कर उनका उपयोग कर रहे हैं, उसका भी उन्होंने अनुभव–कथन किया। जंगल में जड़ीबूटियाँ इकट्ठी करने में आने वाली दिक्कतें, और इस काम को सीखकर आरोग्य सेवा देने में नौजवानों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता के बारे में भी बातें हुई। सारे चरवाहों ने मिलकर बख्तपुरा के नज़दीक के जंगल क्षेत्र में जाकर वहाँ मिलने वाले औषधीय पौधों का अध्ययन करके उनकी उपयोगिता पर भी चर्चा की।

अधिक जानकारी के लिये कृपाविस के अमन सिंह को ईमेल लिखें (krapavis_oran@rediffmail.com).

स्रोत : http://www.anthra.org/news.php?id=35

चरवाहों के लिये समुदाय की जैव सांस्कृतिक प्रारूप संधि (BCP – बायो–कल्चरल कम्युनिटी प्रोटोकॉल)

राजस्थान के रायका चरवाहों ने २००९ साल के जून महीने में रायका समुदाय जैव सांस्कृतिक प्रारूप संधि[५] (BCP) को विकसित किया। कन्वेन्शन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी (CBD) के अनुच्छेद प्रकरण '८जे' के तहत ऐसी प्रारूप संधि, निसर्ग संरक्षण और जैव विविधता का शाश्वत उपयोग करने वाली पारंपरिक जीवनशैली वाले आदिवासी और स्थानीय समुदायों को मान्यता दिलाने के लिये एक साधन होती है। जिन देशों ने इस संधि पर हस्ताक्षर किये हैं उनकी सरकारों के लिए ऐसे समुदायों के ज्ञान का, उनकी नई पद्धतियों का और व्यवसायों का सम्मान करके, और उनके परिवेश और उनकी रक्षा करना भी अनिवार्य है।

साउथ अफ्रीका देश में स्थित 'नैचुरल जस्टिस' संस्थान ने BCP का निर्माण किया। इसका उद्देश्य यही था कि समुदायों को अपने जैव सांस्कृतिक अधिकार प्राप्त हों। निसर्ग क्षेत्र में जायज़ प्रवेश करने वालों का, और लाभ के हिस्सेदारों के अधिकारों का 'नगोया संधि' में भी ज़िक्र किया गया था। CBD पर दस्तखत करने वाले देशों की अक्तूबर २०१० में जापान के नगोया शहर में संपन्न हुई १०वी सभा में इस संधि को मान्यता दी गई थी। यह संधि बंधनकारक अंतर्राष्ट्रीय कानून का हिस्सा बननेवाली है।

जिन चरवाहों ने इस संधि को बनाया, उन रायका चरवाहों के अनेक गाँव राजस्थान के पली ज़िले में अरावली पहाड़ की धार पर बसे हैं। पलायन तो उनकी जीवनशैली का हिस्सा है। भेड़ और बकरियाँ चराना इनकी परंपरा है, परंतु इसके बावजूद वे ऊंट और 'नरी' नस्ल के मवेशियों को भी चराते हैं। रायका समुदाय का स्थानीय परिसंस्था के व्यवस्थापन और लंबे अरसे तक अपने पशुओं के झुंड का पौधों के साथ संतुलन बनाये रखने का पारंपरिक ज्ञान व्यापक है। इसकी मिसाल यह है कि ऊंट पेड़ की ऐसी पत्तियाँ चुन कर खाते हैं जिससे पेड़ और बढ़ते हैं। रायका लोग जंगल में आग को टालने के लिये अनेक प्रयास करते हैं, जैसे कि घास को छोटा रखना, और आग लग भी जाती है तो उसे बुझाने की हर कोशिश करना। BCP में उनकी अन्य पारिस्थितिकी सेवाओं का समावेश किया गया है।

५. http://www.pastoralpeoples.org/docs/Raika_Biocultural_Protocol.pdf

फोटो – इल्से कोएलर–रोलेफ़सन

उंटों को चराते हुए भंवरलाल (रायका)

रायका समुदाय के लोग तो खुद को आरण्य के रखवाले समझते हैं, लेकिन वन विभाग की सोच कुछ अलग है। 'सेंट्रली एम्पावर्ड कमिटी' की आज्ञा के अनुपालन में इस विभाग ने २००३ साल से रायका समुदाय को अपने जानवर जंगल में चराने की अमुमति देना बंद कर दिया। इसके विरोध में राजस्थान उच्च न्यायालय में तथा सर्वोच्च न्यायालय में कई सालों से मुकदमे चलाये जा रहे हैं। कुछ दिनों तक रायका समुदाय वन अधिकार अधिनियम पर आशा लगाये बैठा था। लेकिन इसके क्रियान्वयन में कई समस्याएँ देखी गई हैं। नवीनतम जानकारी यह है कि कुंभलगढ़ अभयारण्य को राष्ट्रीय उद्यान में बदल दिया जाएगा। आने वाले दिनों में रायका जैव सांस्कृतिक प्रारूप संधि का क्या मूल्य होगा, और क्या उनकी अनूठी पारंपरिक जानकारी को उद्यान की व्यवस्थापन योजना में शामिल किया जायेगा, यह अभी तो कोई नहीं जानता।

लेखन : हनवंत सिंह राथोर, संचालक, लोकहित पशुपालक संस्थान, सदरी और इल्से कोएलर–रोलेफ़सन (email: ilse@pastoralpeoples.org), प्रोजेक्ट को–ऑर्डिनेटर लीग फ़ॉर पॅस्टोरल पीपल्स ॲण्ड एन्डोजिनस लाइव–स्टॉक डिवॅलपमेंट।

पता : लोकहित पशु–पालक संस्थान, पोस्ट ऑफ़िस बाक्स १, सदरी 306 702, ज़िला पली, राजस्थान/बूटीबाग, सदरी 306 702, ज़िला पली, राजस्थान. Web-site: www.pastoralpeoples.org; http://www.pastoralpeoples.org/docs/Raika_Biocultural_Protocol.pdf

३. केस स्टडीज़

दक्कन पठार के पशु पालक समुदाय

दक्षिणी भारत के मध्य में स्थित दक्कन का पठार देश के सब से अधिक सूखे इलाकों में से एक है। खेती बहुत मुश्किल है और देहाती लोगों की आजीविका चलाने में पशुपालन का बड़ा महत्त्व है। कुरूमा, कुरूबा, गोलिये और धनगर समुदाय सैकड़ो सालों से यहाँ भेड़ बकरियों को चरा रहे हैं। उनमें से कुछ लोग मानसून के ४ महीनों में यहाँ खेती करते हैं। सितंबर में बारिश के कम होते ही ये सारे समुदाय अपने पशुओं के साथ उस दिशा में निकल पड़ते हैं जहाँ चारा उपलब्ध हो। सालों से इस प्रकार पलायन करते इन समुदायों ने स्थायी खेती करने वाले किसान समूहों के साथ पक्के संबंध स्थापित किये हैं। पशुओं के दूध, लीद, मांस और ऊन के बदले में कृषि उपज की लेन देन की जाती है। इन समुदायों से संबद्ध आजीविका कमाने के अन्य मार्गों का भी विकास हुआ है, जैसे कि ऊन की कताई और बुनाई। इन पारंपरिक चरवाहों के साथ साथ आज कल अन्य कई समूहों के लोग, जैसे कि मराठा, रामोशी और मातंग लोग भी भेड़ों को चराने लगे हैं। इन अलग अलग जाति समूहों और उपसमूहों से, और उनके विशेष किस्म के व्यवसायों से समाज बना है और दक्कन के कठोर इलाके में हजारों परिवारों की परवरिश की जा रही हैं।

भेड़ों की दक्कनी नस्ल

इस इलाके के पशुओं की नस्लें स्थानीय पर्यावरणीय और सामाजिक स्थिति के अनुसार विकसित हुई हैं। यहाँ सब से ज़्यादा लोकप्रिय भेड़ों की नस्ल है काली दक्कनी। छोटी पूँछ वाली इस मध्यम आकार की नस्ल की खुरदरी ऊन ज़्यादातर काली होती है, लेकिन इसके कुछ भेड़ों की ऊन भूरे या सफेद रंग की भी पाई जाती है। दक्कन इलाके के कड़े तापमान का इस नस्ल पर कोई बुरा असर नहीं होता और न ही अकाल में किये जाने वाले दूर दूर तक के पलायन का। यह नस्ल मांस, लीद और ऊन के लिये पाली जाती है। मादा दो सालों में तीन बार बच्चे देती है, जिन्हे बेचने से अच्छी आमदनी मिलती है। भेड़ के दूध को चाय बनाने में इस्तेमाल करते हैं, या फिर उसका दही और छाछ बनाते हैं। दक्कनी ऊन से मोटे कंबल और 'जेन्न' बनते हैं, जो जमीन पर बिछाये जाते हैं। पूरे इलाके के चरवाहों और किसानों में तथा जनसमुदाय में और भारतीय सेना में भी यह लोकप्रिय होते थे। चरवाहे इस नस्ल को अपने ढंग से पहचान लेते हैं। भेड़ के लिंग को, कानों की लंबाई और चौड़ाई को, शरीर पर दिखाई देने वाले निशानों को और सींगों को देखकर और उम्र के आधार पर वे अपनी अपनी भेड़ को पहचानते हैं।

दक्कनी नस्ल ख़तरे में क्यों है?

दक्कनी नस्ल का क्षेत्र काफ़ी बड़ा है और उसका एक विशेष पर्यावरणीय, सामाजिक और आर्थिक स्थान है। दक्कन इलाके ही में तेज़ी से घट रही इसकी संख्या के कई कारण हैं। १९९० के दशक में आस्ट्रेलिया और दक्षिण अमेरिका ने 'मेरीनो' ऊन को भारत में 'डम्प' कर दिया। मतलब 'मेरीनो' की उत्कृष्ट ऊन से बने कपड़े भारी मात्रा में और सस्ते दाम पर यहाँ के बाज़ार में उपलब्ध हुए। फिर बाज़ार में 'सिंथेटिक', मतलब कृत्रिम धागे से बने कपड़े बेचे जाने लगे, जो अधिक टिकाऊ थे। हर साल नई 'दक्कन भेड़ों की ऊन की गोंगली' खरीदने वाले किसानों ने अब खुरदरे कंबल खरीदना तक बंद कर दिया। उसी प्रकार सेना के अधिकारी भी नये 'ब्लैंकेट' पसंद करने लगे। चरवाहों को भेड़ों की ऊन इकट्ठा करना भी नुकसानकारक बन गया। इसी समय देश विदेशों में भेड़ों के मांस के दाम भी बढ़ गये। सरकार ने पशुपालन विभाग

के जरिये दक्कनी भेड़ों के बजाय ज़्यादा मांस वाली और कम ऊन वाली नस्लों को पालने के लिये प्रोत्साहन दिलाया। उन्हे ख़रीदने के लिये कर्ज़ दिया गया। आंध्र प्रदेश में 'लाल नेल्लोर' नस्ल, महाराष्ट्र में 'मडग्याल' नस्ल और कर्नाटक में 'येलुगु' नस्ल के भेड़ पाले जाने लगे। दुर्भाग्य से भारी मांस वाली ये नस्लें कई रोगों का शिकार हो गई। वज़न में भारी होते हुए चारे की उनकी माँग ज़्यादा रहती है और वे पलायन का तनाव भी बर्दाश्त नहीं कर पाती हैं।

इतने सालों से दक्कनी पनप रही थी, क्योंकि बदलती स्थिति के साथ चरवाहे मेल रख पा रहे थे। लेकिन स्थिति में आये बदलावों के साथ खुद बदलते रहने की भी कोई हद होती है।

इलाके में हो रहे परिवर्तन के साथ चरवाहों के जवान बेटे–बेटियाँ अन्य व्यवसाय अपनाते रहे हैं। इस परिस्थिति में दक्कनी नस्ल की रक्षा करने के लिये कल शायद ही कोई बचेगा।

लेखन : नित्या घोटगे (email: anthra.pune@gmail.com)
पता : एफ़, लॅन्टाना गार्डन्स, एन.डी.ए. रोड, बावधन, पुणे 411 021, महाराष्ट्र. Web-site : http://www.anthra.org

निसर्ग संरक्षण और चरवाहों की आजीविका : राजस्थान में किया गया अध्ययन

''हमारा ओरण सुरक्षित रहे तो हमारे पास सब कुछ है। और वह सुरक्षित न रहे तो हमे चारे की, पानी की और लकड़ी की भी कमी महसूस होती है।'' सरिस्का व्याघ्र प्रकल्प के 'कोर ज़ोन' में स्थित बेरा गाँव के बोडन गुज्जर (उम्र ५० साल) ने कहा। राजस्थान के देहाती इलाके में ग़रीबी का सामना तो करना पड़ता है, और साथ ही जलवायु में बदलाव आने के कारण अकाल का या बाढ़ का सामना भी करना पड़ता है। देहात के लोगों का जीवन, और विशेष कर चरवाहों का जीवन अपने ओरण के भरोसे पर बिताया जाता है। ओरण उन्हे पानी, जलावन लकड़ी, इमारती लकड़ी, औषधीय जड़ीबूटियाँ और पशुओं के लिये चारा देता है। राजस्थान के ओरण, वन और चरागाह के ऐसे क्षेत्र हैं जो देवताओं या संतों के नाम पर सुरक्षित रखे जाते हैं। उनको 'देवबनी'[६] भी कहते हैं। संसाधनों के प्रबंधन का यह एक पुराना रूप है।

सरिस्का का मशहूर जंगल भी तो अनेक देवबनियों से बना है। आज भी उनकी सीमाएँ पहचानी जा सकती हैं। अलवर ज़िले में कुल मिलाकर ३०० ओरण या देवबनियाँ होंगी। ज़्यादातर देवबनियों में पानी का कुछ तो स्रोत होता ही है – तालाब या झरना या फिर नदी। चरवाहे समाज के सामाजिक–पर्यावरणीय परिदृश्य का एक जीवित और क्रियाशील हिस्सा हैं।

सरिस्का में १४०,००० पशु पाले जाते हैं और इनमें से ८५ प्रतिशत पशु ओरणों के संसाधनों पर अवलंबित हैं। चरवाहों के परिवार दूध और उससे बने दही, छाछ, घी और मावा जैसे उत्पादनों को बेच कर रोज़ीरोटी कमाते हैं। स्थान के अनुसार सरिस्का के जंगल से जुड़े व्यवसायों की जाँच करें तो यह स्पष्ट होता है कि 'कोर' क्षेत्र में बसे ९५.७ प्रतिशत परिवार पशुपालन के ज़रिये रोज़ीरोटी कमाते हैं। 'बफ़र' क्षेत्र में यह संख्या ६८.५ प्रतिशत है और जंगल के बाहरी क्षेत्र में यह संख्या ३० प्रतिशत है। इसका मतलब है कि यहाँ की अर्थव्यवस्था में पशुपालन व्यवसाय की एक विशेष अहमियत है। इस क्षेत्र में गडेरियों की समृद्ध परंपरा है और समाज में उसका असाधारण योगदान है। गडेरिये न केवल पशुपालन करते हैं बल्कि अकाल से बार बार पीड़ित होने वाले इस प्रदेश में ऐसी स्थिति का सामना करने योग्य स्वदेशी पशु वंश संसाधनों को बनाये रखते हैं। भैस, गाय, ऊंट और बकरियों की नस्लें इनमें शामिल हैं।

इन पशुओं को चराने के लिये ओरण इस्तेमाल किये जाते हैं। चराई की आवश्यकता के अनुसार ओरणों में प्रजातियों की संरचना विकसित हो जाती है। पूरे राजस्थान राज्य के बारे में सोचें तो यहाँ ७५ लाख चरवाहे हैं और १९९७ की सरकारी गणना के अनुसार वे करीबन ५४४ लाख पशुओं को पालते हैं। इनमें से १४३ लाख भेड़ हैं। हर साल करीबन १५ से २० लाख भेड़ें पलायन के मार्ग से राजस्थान में आती हैं। राजस्थान राज्य की आमदनी में १९ प्रतिशत हिस्सा पशुपालन का होता है।

ओरणों की रक्षा के लिये राज्य सरकार की योजना

राजस्थान राज्य ने २०१० में पहली बार बनाई वन नीति में राज्य के जंगलों के प्रबंधन के महत्त्व को स्वीकार किया है। ओरणों और चरागाहों के महत्त्व को इस वन नीति में मान लिया गया है। स्वयंसेवी संस्थान कृपाविस (KRAPAVIS) ने कई सालों से इस बात का समर्थन किया है। इस वन नीति में शामिल किये गये उद्देश्यों में से एक है (३.१.७), जो राज्य के असाधारण और ख़तरे में पड़े जानवरों और पौधों का संरक्षण करने के लिये प्रयास करने के बारे में है – जहाँ वे मिलते हैं वहाँ भी और अन्य जगहों पर भी। साथ ही ओरण, चरागाह और नदी–तालाबों जैसी जैव विविधता से समृद्ध परिसंस्थाओं का संरक्षण और प्रबंधन करना भी शामिल है। अनुच्छेद ५.१० इन प्रयासों का महत्त्व स्पष्ट करता है : ओरण और देवबन अच्छे वनों के मानो टापू हैं और समृद्ध जैव विविधता के भंडारघर हैं। लोगों के धार्मिक विश्वास के निसर्ग संरक्षण के साथ जुड़ जाने के उत्तम उदाहरण हैं ओरण और देवबन। स्थानीय लोगों की धार्मिक भावना के अनुसार उनके लिये आर्थिक और कानूनी मदद का प्रबंध करने की कोशिश की जायेगी।

६. 'देवबनी' और 'देव वन', दोनों का मतलब एक ही है। स्थानीय लोग ज़्यादातर देवबनी कहते हैं और सरकारी संभाषण में देव वन कहा जाता है।

ज़्यादातर उदाहरणों में यही दिखाई देता है कि स्थानीय समुदायों को अपने संसाधनों के प्रबंधन से बढ़ती मात्रा में दूर रखा जा रहा है। वन विभाग जब चाहे इन चरागाहों और देव बनियों को वृक्षारोपण के लिये या संरक्षण के लिये अलग कर सकता है। इसके दो नतीजे हो सकते हैं : एक तो स्थानीय लोगों की अलगाव की भावना और दूसरा है संसाधनों की ख़राबी। सरिस्का वन के बाहर बख्तपुरा में इस बात का एक उदाहरण दिखाई देता है कि समुदाय के सहकार्य के कारण ओरण के संरक्षण में क्या फ़र्क हो सकता है। यहाँ के ओरण को दो हिस्सों में बाँटा गया है। एक पर तो बख्तपुरा के समुदाय का नियंत्रण है, और दूसरा, वन विभाग के नियंत्रण में है। नतीजा यह दिखाई देता है कि ओरण के वन विभाग द्वारा आरक्षित किये हुए हिस्से से पेड़ पौधे छीने गये हैं, मगर समुदाय के रक्षण में रहे हिस्से में खड़े पेडों के समूह अब भी काफ़ी अच्छी स्थिति में हैं। ऐसे अनुभवों को और समझदारी को सरिस्का व्याघ्र प्रकल्प के प्रबंधन में स्थान देना आवश्यक है। इससे निसर्ग संरक्षण को तथा सथानीय समुदायों को लाभ होगा।

लेखन : अमन सिंह (email: krapavis_oran@rediff mail.com)

पता : कृषि एवं पारिस्थितिकी विकास संस्थान (KRAPAVIS), ५/२१८ काला कुआ, अलवर 301001, राजस्थान. Web-site: http://www.krapavis.netne.net

बलुचिस्तान में पश्तून जनजाति के पलायन मार्ग

बलुचिस्तान पालतू पशुओं की अनेक अमूल्य नस्लों का पालना है। स्थानीय चरवाहों ने इन नस्लों को पाला है। आम तौर पर चरवाहे चारे और पानी की खोज में अपने पशुओ के झुंड के पीछे चलते रहते हैं। अनेक पशु प्रजातियों के झुंडों को वे पालते हैं। झुंडों का पलायन चरवाहों के लिये बड़ी महत्त्वपूर्ण बात होती है। उनके पलायन के मार्ग भी स्पष्ट होते हैं। पश्तून खानाबदोश (घुमंतु) आम तौर पर उत्तर दक्षिण पलायन मार्ग पर चलते हैं।

पश्तून खानाबदोशों के उत्तर दक्षिण पलायन के मार्ग

स्रोत : http://www.saves.org.pk/pub/8.pdf

पश्तून जनजाति के चरवाहे पर्यावरण पूरक शैली में पशुपालन करते हैं। वे अमूल्य पशु वंश संसाधनों को अन्न और कृषि उपयोग के लिये सुरक्षित रखते हैं। इस काम में, और रोज़ीरोटी पाने में वे स्वदेशी ज्ञान का प्रयोग करते हैं। इन प्रथाओं के कारण पर्यावरण को और मानव स्वास्थ्य को कोई हानि नहीं पहुँचती है। पशुओं से उत्पादित कई पश्तून अन्न उत्पादन हैं। स्थानीय स्तर पर उनकी उच्च माँग है।

क्र.	सर्द मौसम का मार्ग	गर्मी के मौसम का मार्ग
१	सिबी नीची भूमि	चम्मन, पश्चिमी टोबा काकरी पर्वत श्रेणी और अफ़ग़ानिस्तान के कई क्षेत्र
२	सुलेमान पर्वत श्रेणी	मध्य टोबा काकरी पर्वत श्रेणी, लोरालई, किला सईफुल्ला
३	हर्नई, सिबी ज़िला	मध्य टोबा काकरी पर्वत श्रेणी, झिआरात और लोरालई
४	झोब ज़िला	किला सईफुल्ला, पिशिन और अफ़ग़ानिस्तान

पश्तून पशु नस्लें बलुचिस्तान की जलवायु परिस्थिति से अनुकूलित हैं और उनका प्रबंधन कोई मुश्किल काम नहीं है। स्थानीय चरवाहे उन कीटनाशकों का इस्तेमाल नहीं करते जो बड़े पैमाने पर कृमि और कीट पर नियंत्रण करने के लिये आवश्यक समझे जाते हैं। केवल नैसर्गिक साधनों के माध्यम, जैसे कि कुछ किस्म के तेल, कुछ पौधों के पत्तों का सत्त्व, वगैरह, के जरिये कीट नियंत्रण किया जाता है। और पालतू मुर्गियाँ भी कीट को खाकर उन्हे हानिकारक संख्या तक पहुँचने नहीं देती हैं। सारे उपाय पर्यावरण के लिये हानिरहित हैं।

अपने पशुओं के साथ पश्तून चरवाहे पलयन करते हैं। इन पशुओं पर ही अपना सामान लाद कर वे चलते हैं। इसलिये उन्हे खनिज तेल की कोई जरुरत नहीं होती। क्षेत्र के पौधों के नैसर्गिक फूलने फलने के अनुसार यह पलायन होता है और उनके बीज आवश्यक मात्रा में बच जाते हैं, ताकि अगले साल पौधे फिर उगाये जा सके।

ये चरवाहे अपने क्षेत्र के भूगोल की, और उसके संसाधनों की अच्छी जानकारी रखते हैं। अपने परिवार के लिये और अपने पशुओं के लिये आवश्यक संसाधनों का शोषण टाल कर वे उनका उचित उपयोग करते हैं। झरनों–प्रवाहों का, तथा छोटे तालाब बाँध कर उनका पानी इस्तेमाल किया जाता है। मशीनों के ज़रिये यहाँ के भूजल को ऊपर नहीं खींचा जाता।

इस प्रकार पश्तून गडेरिये स्थानीय संसाधनों को सोच समझ कर इस्तेमाल करके अपने आरोग्य का रक्षण करते हुए पर्यावरण के लिये सुरक्षित उत्पादन बनाते हैं।

लेखन : डा. अब्दुल रज़िक, पाकिस्तान (email: saves@saves.org.pk), प्रेसिडेन्ट, सोसायटी ऑफ़ ॲनिमल, वेटेरिनरी ॲण्ड एन्वायरनमेंटल साइंटिस्ट्स। वह कॅमल असोसिएशन ऑफ़ पाकिस्तान (CAP) के आयोजक और लाईफ (LIFE) नेटवर्क पाकिस्तान के समन्वयक भी हैं।

पता : Kakar house, street 7, Faisal town, Brewary Road, Quetta, Pakistan. Web-site : http://www.saves.org.pk/

४. अंतर्राष्ट्रीय समाचार

महिला चरवाहों का विश्व सम्मेलन

चरागाहों और पशुओं के बीच विकसित जटिल मौसमी संबंध पर ही पशुपालन का व्यवसाय आधारित है। चारा देने के लिये भूमि और अन्य नैसर्गिक संसाधनों का प्रबंधन तो इन संसाधनों को लचीलेपन के साथ इस्तेमाल करने के लिये उन पर किये जाने वाले अनेक दावों पर आधारित हैं। चरवाहों के दावे कुछ हद तक क्षेत्र के अन्य

फोटो – सबीन पलास

मालधारी नारियाँ विश्व पशु पालक महिलाओं का सम्मेलन

उपयोगकर्ताओं के दावों के साथ व्याप्त होने के कारण चरवाहों को पारंपरिक रीति से परिवारों के पुरूष प्रमुखों द्वारा बातचीत करके अन्य उपयोगकर्ताओं के साथ बात निबटानी पड़ती है। इस प्रक्रिया में महिला गडेरियों के लिये संसाधनों पर काबू रखने की कोई गुंजाइश नहीं रहती है। उनके भोगाधिकार तो होते हैं लेकिन अन्य लोगों के साथ निबटाने के लिये उनको परिवार के पुरूषों के द्वारा ही बोलना पड़ता है। यह बात, चरवाहे परिवारों में महिलाएँ, जो पशुओ के पालन में अहम् भूमिका निभाती हैं, जैसे कि पशुओं के आरोग्य का प्रबंधन, उनके विरोध मेंहै। महिला चरवाहों को अपने समाज की चौखट में कोई निर्णय करने का अवसर शायद ही कभी मिलता हो। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाली चरवाहों की किसी पहल में महिलाएँ बहुत कम शामिल हुई हैं।

क्या महिलाओं को सक्षम बनाने से पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था को ठेस पहुँचेगी?

कुछ रिसर्च कर्ताओं का कहना है कि उपनिवेशी विदेशियों के आने से पहले पारंपरिक समुदाय असल में समानाधिकार पर आधारित था। और उपनिवेशी लोगों के पुरूष प्रभुत्व युक्त और धनाधिष्ठित असर में पशु पालन करनेवाले समुदायों में महिलाओं को कुछ चुनी हुई भूमिका तक सीमित रखा गया और निर्णय प्रक्रिया से उनको दूर हटाया गया। पिछले ५० सालों में आयोजित किये गये कार्यक्रमों में पुरूषों के विकास पर जोर लगाया गया और इसके कारण महिलाओं की ताकत तुलना में घटती ही रहीं है।

पशु पालक समुदायों की महिलाओं को समर्थ बनाने की कोशिशों का उद्देश्य तो पशु पालक समुदायों में फिर से समानाधिकार स्थापित कराने और निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं को उनकी भूमिका लौटाने का है। लेकिन सामाजिक और राजनैतिक समर्थता बढ़ाने के साथ साथ महिलाओं की आर्थिक समर्थता को बढ़ाने की भी आवश्यकता है, क्योंकि यह सारी बातें एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं। आर्थिक तौर पर सक्षम महिलाएँ समुदाय में ज़्यादा आदरणीय मानी जाती हैं और उन को निर्णय प्रक्रिया में भी शामिल किया जाता है।

महिलाओं को समर्थ बनाने के विरोध में यह अनेक बार कहा जाता है कि यह पाश्चात्य नारीवादी विचार है और पारंपरिक व्यवस्था के साथ उसका कोई वास्ता नहीं है। लेकिन यह सत्य नहीं है क्योंकि खुद पशु पालक महिलाएँ समता की माँग कर रही हैं।

पशु पालन करने वाले समुदायों की महिलाएँ यदि समर्थ बन जाएँ, तो समुदाय के सत्ता संबंधों में बदलाव तो आयेगा। मर्दों को डर महसूस हो सकता है और परिवार में तथा समुदाय में इसके नकारात्मक नतीजे भी हो सकते हैं। महिलाओं को जो हासिल करना है उस के अनुसार ही सक्षमता बढ़ाने की प्रक्रियाएँ संचालित की जानी चाहिये, क्योंकि वे खुद अच्छी तरह जानती हैं कि उन्हे कैसी मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा और वह किस प्रकार किया जा सकेगा।

पशु पालन अलग अलग लोगों द्वारा नहीं बल्कि आपस में जुड़े अनेक परिवारों की एक संपूर्ण व्यवस्था है, जिसमें हर एक व्यक्ति की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। व्यवस्था में लिये जाने वाले निर्णयों में, व्यवस्था की आर्थिक व्यवहार्यता, वगैरह, में, समर्थ महिलाओं का बहुमूल्य योगदान होगा तो समुदाय को जरूर लाभ होगा। इस व्यवस्था में महिलाओं और मर्दों का, दोनों की समर्थ सहभागिता आवश्यक है। इसके विपरित परिस्थिति में अगर पशु पालन करने वाले समुदाय अधिकाधिक मुश्किलों का सामना करते रहें और महिलाओं को निर्णय प्रक्रिया से बाहर रखा गया, तो व्यवस्था कमज़ोर हो कर टूट भी सकती है। ज़ाहिर है कि महिला पशु पालन कर्ताओं को सक्षम बनाया जाये तो पशु पालन व्यवस्था भी सक्षम होगी।

महिला चरवाहों का विश्व सम्मेलन भारत में गुजरात के मेरा गाँव में २०१० के नवंबर २१ और २६ के बीच संपन्न हुआ। इस में ऊप्त सारी बातों को बदल ड़ालने की कोशिशें की गई। इस हफ़्ते में दुनिया भर के ३२ अलग अलग देशों में फैले पलायन करने वाले चरवाहे परिवारों में से १०० नारियाँ अपने प्रश्नों को सुलझाने के उद्देश्य से इकट्ठा हो गई थी।

महिला चरवाहों के विश्व सम्मेलन का 'मेरा घोषणापत्र'[७]

हम सरकारों, संयुक्त राष्ट्रों की एजेंसियों, अन्य उचित अंतर्राष्ट्रीय और प्रादेशिक संस्थानों और अनुसंधानों, तथा हमारे पारंपरिक नेताओं से निवेदन करते हैं कि वे हमारा समर्थन करें और इस कार्य में हमें सहायता दें :

१. विश्व पर्यावरणीय शाश्वतता स्थापित करने में, जैवविविधता संरक्षण करने में, जलवायु परिवर्तन का अल्पीकरण करने में और रेगिस्तानों के आक्रमण से लड़ने में चरवाहों की भूमिका को मान्यता दें।

२. चरवाहे समाज की नारियों के समान अधिकारों का समर्थन करें और समाज मे उनकी प्रमुख भूमिका को मान्यता दें। इस में महिला चरवाहों के कार्य को वैध व्यवसाय मानना और चरवाहों के व्यवसाय का वे प्रमुख घटक हैं, इस बात को मान्यता देना शामिल हैं।

३. चरवाहों का पलायन उनका आधारभूत अधिकार है, इस बात को मान्यता दें।

४. पारंपरिक चरागाहों के साथ साथ सारे आवश्यक संसाधनों तक चरवाहों की पहुँच को सुरक्षित रखें।

५. चरवाहों के अधिकारों को सुरक्षित रखें, और पलायन के क्षेत्र में उनकी सुरक्षा का और नारियों की सुरक्षा की हामी देने के लिये बनाये गये कानून का ध्यान रहे।

६. जो चरवाहे आदिवासी कहलाते हैं, उनको मान्यता दें और संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा 'इंडिजिनस' लोगों के अधिकारों पर जारी किये हुए घोषणापत्र का आदर करें।

७. चरवाहों को प्रभावित करने वाली और उनकी सुरक्षा के लिये बनाई जा रही नीति के क्रियान्वयन की निगरानी की जाये।

८. चरवाहों के अधिकारों के उल्लंघन के बारे में आने वाली शिकायतों पर गौर करने के लिये अंतर्राष्ट्रीय संस्थान का विकास करने के लिये सहायता करें। इस संस्थान में महिलाओं का स्थान हो, और जिन देशों मे ऐसे उल्लंघन हुए हो वे इस संस्थान के प्रति उत्तरदायी हों।

९. चरवाहों की जीवनशैली की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए कानून में बदलाव लायें और पारंपरिक पलायन–युक्त चरवाही की सघन पशु उत्पादन व्यवस्था से जो गहरी भिन्नता है उसे पहचान लें।

लेखन : मोना पटेल (email maragindia@rediffmail.com)
Web-site: www.marag.org

७. 'मेरा घोषणापत्र' यहाँ संक्षिप्त रूप में दिया गया है।

सम्मेलन में जिन मुख्य मुद्दों पर चर्चाएँ हुई, उनमें शामिल थे बाज़ार, नियम और अधिकार व पर्यावरण; तथा सामाजिक आंदोलन, शिक्षा और आरोग्य। कार्रवाई के योग्य मुद्दों पर भी चर्चाएँ हुई, जैसे कि प्रतिनिधित्व, समाज में संपर्क व्यवस्था, शिक्षा और क्षमता का विकास, और जनवकालत 'मेरा घोषणापत्र' का मसौदा बनाने के लिये प्रतिनिधि भी चुने गये। पशुपालन नीति के विकास के बारे में जानकारी देने और समर्थन करने, तथा पर्यावरणीय शाश्वतता के प्रति, और आनेवाली पीढ़ियों के लिये जैवविविधता के, और सार्वजनिक संसाधनों के संरक्षण के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जताने के लिये यह घोषणा की गई। यह कागज़ सरकारों से, अंतर्राष्ट्रीय और प्रादेशिक संस्थानों से, अनुसंधान संस्थानों से और पारंपरिक नेताओं से अनुरोध करता है कि वे २३ सूत्रों में स्पष्ट की गई विशिष्ट कार्रवाई के द्वारा महिला चरवाहों का समर्थन करें। उन्होंने नायजर देश की श्रीमती सफूरतू मूसा काने को और भारत के श्री लालजी देसाई को संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्न और कृषि संस्थान (FAO) के स्वयंसेवी तंत्र की प्रबंधन समिति का एक साल तक के लिए केंद्र बिंदु 'Focal Point' बनाया।

लेखिन : सबीन पालास (email:s.pallas@landcoalition.org),
लॅण्ड राईट्स सेक्रेटेरिअट ऑफ़ द इंटरनॅशनल लॅण्ड कोअलिशन (ILC) में प्रोग्रॅम ऑफ़िसर फ़ॉर विमेन्स लॅण्ड राईट्स। ज़मिन से निगडीत महिलाजनों को भूमि अधिकार दिलाने की कोशिश और ऐसे अधिकारों से निगडित नीति तज्ज्ञों को प्रवृत्त करने का प्रयास ILC संस्थान करता है।
Address: International Land Coalition, Secretariat at IFAD, Via Paolo di Dono 44, 00142 Rome, Italy. Web-site: http://www.landcoalition.org/docs/t12wal htm:http://cso4cfs.org

संपादक को पत्र[८]

...आप के समाचार पत्र और अन्य सामग्री मुझे नियमित रूप से मिलते हैं। पढ़ने के बाद मैं सारी सामग्री मुझे मिलने वाले किसी भी व्यक्ति को सौंप देता हूँ। उद्देश्य के प्रति आप की ईमानदारी ने मुझे सब से ज़्यादा प्रभावित किया है और मुझे यकीन है कि, लंबे अरसे के बाद ही सही, आप के प्रयासों का वाचकों पर अवश्य प्रभाव होगा, बावजूद इस बात के, कि होने वाले लाभ का सही अनुमान लगाना मुमकिन नहीं है...

लेफ़्टिनेंट जनरल बलजीत सिंह (चंड़िगढ़)

८. संपादक को (feedback के तौर पर) लिखे गये खतों में से कुछ चुने हुए मुद्दे ऊपर दिये गये हैं। सारे खत यहाँ देखिये : http://www.kalpavriksh.org/feedback

महान कार्य किया जा रहा है। कल्पवृक्ष की टीम को बधाई हो... दी गई जानकारी निसर्ग संरक्षण विषय पर व्याख्यान देने के लिये मुझे उपयुक्त लगी... रचना श्रेष्ठ है और विषय उत्तम। आगे बढ़ो।

डा. एस.के. बरिक, शिलाँग (मेघालय)

यह पत्र जानकारी को अपडेट करने में और विशिष्ट मुद्दों के संशोधन में निश्चित ही उपयुक्त है। अपनी राय बनाने के लिये इस से अच्छी समझ मिलती है। ...मुफ़्त में मिलने वाली बेहतर सामग्री में यह शामिल है। शायद स्थानीय भाषा स्थानीय स्तर पर अधिक उपयुक्त होगी...

आर. श्रीधर, एन्विरौनिक्स ट्रस्ट (नई दिल्ली)

...ये उपयुक्त हैं। कृपया उत्तर पूर्वी राज्यों से जुड़े मुद्दों पर, और विशेष कर निसर्ग संरक्षण में होने वाले संघर्ष पर, जोर दें...लेख अच्छे हैं...

श्री. धृतिमान दश (असम)

...समुदाय व संरक्षण हमें मिला। इस में कानून और नीति पर जोर दिया गया है, जैसे कि वन अधिकार अधिनियम, ...ओडिशा, राजस्थान से ख़बरें इस में शामिल हैं लेकिन वन अधिकार अधिनियम पर जोर दिया गया है और यह समाचार और चर्चा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है...

श्री. खोब्रागडे, सायगाटा (महाराष्ट्र)

... आप के द्वारा प्रकाशित की हुई सारी सामग्री हमें नियमित रूप में मिलती है और वह हमारे कार्य में बहुत ही उपयुक्त साबित होती है। इस इलाके में किसी पर अन्याय हुआ हो, तो हम अधिकारियों को आप की भेजी हुई जनवकालत सामग्री का हवाला पेश करते हैं...

श्री. भूपाल सिंह, विविधरा,
नहिकला देहरादून (उत्तराखंड)

वाचकों के लिये नोट

आप अगर यह समाचार पत्र किसी अन्य पते पर पाना चाहते हैं तो कृपया वह पता हमे यहाँ भेजिये kvoutreach@gmail.com। या फिर उसे डाक से संपादक के पते पर भेज दें।

समुदाय और संरक्षण – स्थानिक आजीविकाओं को ध्यान में रखते हुए जैवविविधता का संरक्षण पशुपालन करने वाले समुदायों को समर्पित विशेष अंक, अंक ३, नं. ३ मई २०११
संपादक : मिलिन्द वाणी, परामर्श व भाषा संपादन : नीमा पाठक ब्रूम
संपादकीय सहयोग और अनुवाद : अनुराधा अर्जुनवाडकर, मीनाक्षी कपूर, शर्मिला देव, पंकज सेखसरिया, सीमा भट्ट
मुखपृष्ठ – फोटो १: बलुचिस्तान में पश्तून जनजाति, डा. अब्दुल रज़िक
फोटो २: मालधारी नारियाँ विश्व पशु पालक महिलाओं के सम्मेलन की समाप्ति, सबीन पलास
चित्रांकन : मधुवंती अनंतराजन, राम चंद्रन, प्रकाशक : कल्पवृक्ष, अपार्टमेंट ५ श्री दत्त कृपा, ९०८ डेक्कन जिमखाना, पुणे ४११ ००४
फोन : 91-20-25675450 फोन/फॅक्स : 91-20-25654239
ई–मेल : kvoutreach@gmail.com वेबसाइट : www.kalpavriksh.org
आर्थिक सहयोग : मिज़ेरिओर, आखेन, जर्मनी

निजी वितरण के लिये

प्रकाशित विषयवस्तु (Printed matter)

सेवा में,